हरिद्रा
(सांस्कृतिक शोध का अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम)
ISSN : 2582-9092

जनता की वाणी को स्वर देने वाले कवि दिनकर

प्रो. नरेंद्र मिश्र

रामधारी सिंह दिनकर भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावना को पूरी शक्ति के साथ वाणी देने वाले ओजस्वी कवि हैं । दिनकर का काव्य विविधताओं से आच्छादित है जहाँ उन्होंने राष्ट्रवादी कविता लिखी है वहीं उन्होने समय के साथ–साथ प्रणय और रोमान्स कविता लिखने से भी नहीं परहेज किया हैं । उनके काव्य में निश्छल प्रणय की अन्तर्वाहिनी प्रवहमान रही है । वे शुष्क नैतिकतावादी या नीरस उपदे ात्मक कविता के पक्षपाती नहीं है । 'रेणुका' उनकी पहली रचना है। इसमें प्रणय की प्रगाढ़ अनुभूति का मार्मिक चित्रण पाया जाता है । 'हुंकार' में कवि की राष्ट्रीयता की भावना पराधीन भारत के दास्यबंधन को काटने की भीषण हुंकृति गर्जना के रूप में अभिव्यक्त हुई है । 'रसवंती' में कवि का रूप बदल गया है । क्रांतिकारी के स्थान पर यहाँ एक सौंदर्योपासक कवि का रूप मिलता है । 'द्वंद्वगीत' में कवि के मन का अंतर्द्वद्व प्रस्फुटित हो सका है । यहाँ दिनकर नियतिवादी रूप में प्रस्तुत हैं ।

'कुरुक्षेत्र' दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के उपरांत सन् 1946 में प्रकाशित हुआ । इसमें युद्ध की भयंकर समस्या को विश्लेषण और विवेचन के लिए उठाया गया है । कवि की यह एक महत्वपूर्ण प्रबंधात्मक रचना है । इसमें मानवजाति की एक चिरंतन समस्या–युद्ध–का विवेचन किया गया है । यह एक विचार प्रधान कृति है । महाभारत के कथानक की पृष्ठभूमि में युद्ध के औचित्य–अनौचित्य के प्रश्न पर कवि ने प्रकाश डाला है । 'रशमीरथी', 'उर्वशी' आदि कृतियों में कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता, गंभीर विश्लेषण की मौलिक प्रतिभा, भारतीय संस्कृति की गरिमा में अटूट आस्था और निरंतर प्रगतिशीलता की भावना का पर्याप्त प्रमाण दिया है । राष्ट्रीय चेतना के विकास में उनका योगदान स्तुत्य है, उनकी वाणी में शक्ति है, ओज है । हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में उनका स्थान अप्रतिम है ।

हिमालय भारत की संस्कृति का संरक्षक है । हमारे इतिहास के निर्माण में इस देवतात्मा नगाधिराज का पात्र महत्वपूर्ण है । वह भारत की प्रतिष्ठा, गरिमा, वैभव और समृद्धि का संकेत है। कवि हिमालय को संबांधित करते हुए कहता है कि इस देश की रक्षा करो, दुर्दशाग्रस्त और दुर्भाग्यपीड़ित इस भारत–भूमि के लिए उद्धार का मार्ग बताओ । इस बहाने वह देशवासियों को ही विगत इतिहास की स्मृति दिलाकर राष्ट्रोन्नति के कार्य के लिए कटिबद्ध होने का उपदेश दे रहा है ।

ISSN : 2582-9092

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम–किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

हिमालय का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि अब मौन त्याग कर सिंहनाद कर, ये त्याग, तपस्या का समय नहीं है वरन् नवयुग का संचार करने के लिए तत्पर होना होगा । यथा–

तू, मौन त्याग कर सिंहनाद,
रे तपी ! आज तप का न काल ।
नव–युग–शंखध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल !

यहाँ कवि हिमालय को ही नहीं जगाता बल्कि करुणा के साक्षात अवतार भगवान बुद्ध को भी जागृत करता है । युगधर्म की दुहाई देकर कवि अनाचार, अनीति और अपमान से देश के दीन–हीन गरीब, बेसहारा, दलित, दमित लोगों के न्याय के लिए निरंतर जागृत करने के लिए दुहाई देते हुए कहता है–

अनाचार की तीव्र आँच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व ! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं ।
जागो विप्लव के वाक्! दम्भियों के इन अत्याचारों से,
जागो, हे जागो, तप–निधान! छलितों के हाहाकारों से ।
जागो, गांधी पर किये गये मानव–पशुओं के वारों से,
जागो, मैत्री–निर्घोष ! आज व्यापक युगधर्म–पुकारों से !
जागो, गौतम ! जागो, महान !
जागो, अतीत के क्रांति–गान !
जागो, जगती के धर्म–तत्व !
जागो हे ! जागो बोधिसत्व !

इस कविता में महात्मा बुद्ध की स्तुति है । महात्मा बुद्ध ने वैदिक वर्ण–व्यवस्था का

ISSN : 2582-9092

विरोध किया था । धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में महान् क्रांति के सूत्रधार बुद्धदेव सर्वसमता के समर्थक थे, सार्वभौम करुणा के अवतार थे । उन्हीं के देश में पवित्र भारत की पुण्यभूमि में, अस्पृश्यता का कलंक भी पाया जाता है । हरिजन सामाजिक अन्याय के शिकार हैं । कवि इस अंधविश्वास का घोर विरोध करता है और सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना के लिए युगधर्म का संदेश पुकार–पुकार कर जनता तक पहुँचाता है। बुद्ध की साधना वैयक्तिक निर्माण के लिए नहीं थी । वे तो लोककल्याण के साधक थे । स्वयं तपस्या, त्याग, वैराग्य का कठिन जीवन बिताकर जीवन की कठिनाइयों को 'विष' कहा गया है । शंकर ने कालकूट विष स्वयं पी लिया । देवताओं को अमृत पिलाया । उसी प्रकार बुद्ध ने भी स्वयं कष्ट सहकर प्यासी जनता को ज्ञान का अमृत पिलाया, मुक्ति का रहस्य बतलाया, इसीलिए वे 'भगवान' कहलाए ।

दिनकर का काव्य ओज से ओतप्रोत है । यह ओज राष्ट्रीय चेतना और मानवता के उद्धार की भावना से युक्त होकर स्पृहणीय बन गया है । इनकी प्रारंभिक रचनाएँ समय की पुकार के उत्तर में लिखी गयीं हैं । उस समय विदेशी–शासन का दमन–चक्र पूरी क्रूरता के साथ चल रहा था । जनता क्षुब्ध और त्रस्त थी । फलस्वरूप उस काल के कुछ प्रसिद्ध कवियों में जहाँ अनेक प्रकार की निराशा ने जन्म लिया, वहाँ 'दिनकर' में उसकी प्रतिक्रिया अमर्ष बनकर उमड़ी, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला । 'रेणुका' और 'हुंकार' में ये कहीं रुद्र और भवानी का आह्वान करते दिखाई पड़ते हैं, कहीं बलिदानी वीरों के गीत गाते, कहीं, 'नीरों और 'जार' के बहाने अत्याचारियों के विरुद्ध अपनी वाणी का स्वर ऊँचा करते । भारत वर्ष कृषकों का देश है, अतः उनकी दीन दशा पर ये अत्यधिक विचलित दिखाई देते हैं । उन दिनों ये तलवार और तीर, आँधी और आग तथा ज्वालामुखी और प्रलय की भाषा में प्रायः बोला करते थे ।

युवकों को उद्‌बोधन देने, जनता को उत्साहित करने और राष्ट्रीय भावना के प्रचार के लिए इन्होंने न जाने कितनी रचनाएँ लिखीं जिनमें 'हाहाकार', तांडव, 'दिगम्बरी', अनल–किरीट, 'शहीद–स्तवन' और 'विपथगा' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इस ओज का पर्यवसान अंत में गांधी–दर्शन में हुआ जिसका प्रमाण इनकी 'बापू' रचना है । 'दिनकर' को निश्चित रूप में 'जनता का कवि' कहा जा सकता है । 'जनतंत्र का जन्म' शीर्षक रचना में जनता का पक्ष लेते हुए इन्होंने 26 जनवरी, 1950 को देश के शासकों को ललकारा था–

ISSN : 2582-9092

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

भारतीय बुद्धिजीवी पर इस नए बोध का प्रभाव इतना था कि कवि लोग प्रतीक में और स्पष्ट अभिधा में भी इसका गान लिखने लगे। सुमित्रानंदन पंत की आरंभिक कविता 'प्रथम रश्मि' में 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना', इसी की ध्वनि–प्रतिध्वनि है। पंत की ही तरह दिनकर ने भी रेणुका में 'जागरण' शीर्षक कविता में मैं शिशिर भाीर्णा चली अब जाग ओ मधुमासवाली लिखा। भीर्ण शिशिर का प्रस्थान मध्यकालीनता के अंत की सूचना देता है। नवयुग के आगमन ने कवियों को नई सरस्वती से संपन्न कर दिया। 'हिमालय' दिनकर काव्य में ही नहीं, पूरे हिंदी काव्य में भी नवजागरण की अत्यंत सशक्त कविता है। यह सदियों से जड़ता में सोए देश को झकझोरने, जगा देने की कविता है। 'ओ मौन तपस्या लीन यती पल भर तो कर 'दृगोन्मेष'। दिनकर इस नवजागरण का बैतालिक बनकर हिंदी कविता में आते हैं। उन्हें स्वयं इसका पूरा बोध है। वे 'आलोकधन्वा' कविता में लिखते हैं–''मैं विभापुत्र, जागरण गान है मेरा।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृष्ठ क्र. 42) हिंदी कविता में प्रसाद, निराला और पंत की तरह दिनकर भी जागरण का गीत लेकर आए। यह बड़ी ही अर्थपूर्ण बात है कि ''उदासीनता की धारा में बहते–बहते हिंदू एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे थे, जहाँ स्वाधीनता और पराधीनता में कोई भेद नहीं था, अन्याय और न्याय में कोई अंतर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था जिसका उत्तर देना आव यक हो। 19वीं सदी से पूर्व के भारतीय साहित्य में कोई भी लेखक या कवि ऐसा नहीं हुआ जो यह कहने का साहस करे कि यह अन्याय है और हम इस अन्याय का विरोध करने को आए हैं।'' (संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पुनरावृत्ति 1993 ई. लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 535)

स्वामी विवेकानंद भारतीयों में बल–वीर्य की महिमा और चेहरे पर ओज की दमक देखना चाहते थे। उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा–''मैं भारत में लोहे की मांसपेशियों और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी देखना चाहता हूँ, क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शंपाओं एवं वज्रों से निर्मित होता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्र–वीर्य और ब्रह्म तेज इनके समन्वय से भारत की नई मानवता का निर्माण होना चाहिए।''(संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पुनरावृत्ति 1993 ई. लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 535) विवेकानंद की यह कल्पना रश्मिरथी के कर्ण की शरीर रचना में गुरु परशुराम के मुख से

ISSN : 2582-9092

निःसृत होती है :

पत्थर–सी हों मांसपेशियाँ, लोहे से भुजदंड अभय।
नस–नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।।

नवजागरण के कवि दिनकर में भाक्ति और पौरुष की उपासना का जो स्वर मिलता है, उसके स्रोत विवेकानंद हैं। निवृत्ति का विरोध विवेकानंद से आरंभ होता है किंतु उस विचार को दर्शन के स्तर पर गीता पर कर्मयोगशास्त्र नामक अपने भाष्य में लोकमान्य तिलक ने प्रतिश्ठित किया। तिलक ने गीता के सभी निवृत्तिपरक भाष्य का तिरस्कार कर उसकी प्रवृत्तिपरक व्याख्या की और उसे जीवन संघर्ष के दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। तिलक ने लिखा है–'' अहिंसा धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ माना गया है, परंतु अब कल्पना कीजिए कि हमारी जान लेने के लिए या हमारी स्त्री या कन्या पर बलात्कार करने के लिए कोई दुश्ट मनुष्य हाथ में शस्त्र लेकर तैयार हो जाय और उस समय हमारी रक्षा करनेवाला कोई न हो, तो उस समय हमको क्या करना चाहिए? क्या 'अहिंसा परमो धर्मः', कहकर ऐसे आततायी मनुश्य की उपेक्षा की जाए?'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृष्ठ क्र. 44) तिलक के इसी संघर्षमूलक दर्शन के प्रभाव में दिनकर ने लिखा हैः

क. कौन केवल आत्मबल से जूझकर जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा आत्मबल का एक वंश चलता नहीं।

ख. छीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग–तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

ग. त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भींग कर, व्यक्ति का मन तो बली होता मगर,
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे, काम आता है बलिष्ठ भारीर ही।

इस प्रकार नवजागरण के विचारकों ने शारीरिक बल, स्फीत ऊर्जा और ओज पर बल दिया। मार्क्सवाद राष्ट्रीयता का तिरस्कार कर अंतरराष्ट्रीयता की वकालत करता है। उसकी प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के विश्वदर्शन से है। उस समय सोवियत संघ उसका एकमात्र गढ़ था। अतः भारत में जब गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' नारा 9 अगस्त, 1942ई. में दिया तब भारत के साम्यवादी सोवियत संघ की रक्षा के लिए बेहाल थे। उन्हें भारत की स्वाधीनता से कुछ

ISSN : 2582-9092

लेना–देना नहीं था। इधर सारे संसार में उपनिवेशवाद के खिलाफ अनेक देशों में मुक्ति के लिए संघर्ष चल रहा था। कवि दिनकर की पहली प्रतिबद्धता अपने देश की स्वाधीनता के प्रति थी। उन्होंने 'साहित्य और राजनीति' नामक निबंध (मिट्टी की ओर) में लिखा–''हम पराधीन जाति के सदस्य हैं। अंतरराष्ट्रीयता की अनुचित उपासना से हमारी राष्ट्रीय भाक्ति का ह्रास होगा। राष्ट्रीयता हमारा सबसे महान धर्म और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या है। जो लोग हमें अंतरराष्ट्रीयता के भुलावे में डालकर हमारी आँखों को दिल्ली से हटाकर अन्यत्र ले जाना चाहते हैं, वे अवश्य ही हमें धोखा दे रहे हैं।'' वे साफ देख रहे थे कि अनेक देश उपनिवेशवाद की जकड़ से निकलने की स्थिति में आ रहे हैं। यथा–

छिन्न–भिन्न हो रही मनुजता के बंधन की कड़ियाँ।
देश– देश में बरस रही आजादी की फुलझड़ियाँ।।

दिनकर भारतीय स्वाधीनता के वैतालिक हैं। वे साफ कहते हैं–''मास्को का हम आदर करते हैं किंतु हमारे रक्त का एक–एक बूँद दिल्ली के लिए अर्पित है। जब तक दिल्ली दूर है, मास्को के निकट या दूर होने से हमारा कुछ बनता–बिगड़ता नहीं। पराधीन देश का मनुश्य सबसे पहले, अपने ही देश का मनुश्य होता है। विश्व–मानव वह किस बल पर बने? और विश्व मानव की पंक्ति में गुलामों को बैठने ही कौन देता है? जब तक दिल्ली की जंजीरें नहीं टूटतीं, हमारे अंतरराष्ट्रीयता के नारे निश्फल और निस्सार हैं।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृष्ठ क्र. 44 भारतीय साम्यवादियों के लिए दिल्ली की स्वाधीनता कोई चीज नहीं थी, उनके लिए मास्को महत्वपूर्ण था। राष्ट्रवादी कवि दिनकर इस वैचारिक संकट के क्षण में दिल्ली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता फिर दुहरा देते हैं। 'दिल्ली और मास्को' कविता इसी वैचारिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गई है। यह सुमन की कविता 'मास्को अब भी दूर है' के जवाब में लिखी गई लगती है। वे हिंदी के ही नहीं वरन् भारत की किसी भी भाशा के आधुनिक काव्य में प्रखर, संघर्षशील राष्ट्रीय धारा के सबसे बड़े कवि हैं।

इतिहास तथ्यों का संकलन मात्र नहीं होता। इतिहास का लेखन किसी वैचारिक परिप्रेक्ष्य से होता है। कवि दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय ग्रंथ की रचना स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में उभरने वाले मूल्यों के संदर्भ में की है। वे संस्कृति के राष्ट्रवादी इतिहासकार हैं। जिस राष्ट्रवादी इतिहास–दर्शन का प्रवर्तन रमेशचंद्र दत्त, आर.सी.

ISSN : 2582-9092

मजूमदार तथा सर यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र में किया है, उसी इतिहास दर्शन का विनियोग दिनकर ने संस्कृति के क्षेत्र में किया है। स्वाधीनता आंदोलन के प्रसंग में विकसित होनेवाले मूल्य ही इस ग्रंथ के परिप्रेक्ष्य निर्धारित करते हैं। वे मूल्य हैं उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक संस्कृति की अवधारणा। इन मूल्यों के इर्द–गिर्द ही यह ग्रंथ लिखा गया है। दिनकर भारतीय संस्कृति के राश्ट्रवादी इतिहासकार हैं। आर्यों को बाहर से आने वाली बात का खंडन करते हुए दिनकर लिखते हैं–''आर्य और द्रविड़, दोनों प्रकार के लोग, इस देश में अनंत काल से हते आए हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में इस बात को कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि ये दोनों जातियाँ बाहर से आईं अथवा इन दोनों के बीच कभी लड़ाइयाँ भी हुईं थीं। आर्यों का संघर्ष दास और असुर जाति के लोगों से हुआ था, इसका थोड़ा बहुत प्रमाण है, किंतु ये दास और असुर कौन थे, इस विशय में हमारे पास सुनिश्चित प्रमाण नहीं हैं।

नई शिक्षा और अंग्रेजी भाषा पर विचार करते हुए दिनकर लिखते हैं –''भारत में जब अंग्रेज आए, तब धीरे–धीरे अंग्रेजी भाषा भी फैलने लगी। भारत में अंग्रेजी के प्रचार के तीन लक्ष्य थे। पहला यह था कि भारत वासियों को अंग्रेजी सिखाकर कंपनी का शासन आसानी से चला जा सके, दूसरा लक्ष्य यह था कि अंग्रेजी पढ़ा व्यक्ति आसानी से क्रिस्तान बनाया जा सकता था और तीसरा लक्ष्य यह था कि भारतीयों को अंग्रेजी संस्कृति में दीक्षित कर मन से भी अंग्रेज बनाया जा सके। लंबी बहस के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1835 ई. में भारतीयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया। इस हेतु 1835 ई. में कंपनी ने मैकाले की मिनिट्स को स्वीकार किया। यहीं से भारत में विधिवत् अंग्रेजी शिक्षा लागू हुई और इसी को नई शिक्षा कहा गया। मैकाले ने यह कहा था कि अंग्रेजी पढ़कर यहाँ के अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोग तन से भारतीय, किंतु मन से अंग्रेज हो जाएँगे, किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। दिनकर ने लिखा है–''अंग्रेजी के संपर्क से हिंदू धर्म में जागृति की एक ऐसी लहर उठी कि हिंदुत्व का रोग ही दूर हो गया और अंग्रेजी पढ़ने के कारण ही भारतीयों में राष्ट्रीयता की उमंग उठी, जिससे वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे। इस देश में स्वाधीनता की लड़ाई का नेतृत्व मुख्यतया अंग्रेजीदाँ नेताओं ने किया और अंग्रेजी पढ़कर अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंका।

दिनकर यह मानते हैं कि समग्र रूप से भारत की संस्कृति की निरंतरता बनी रही। उन्होंने लिखा है–''आज से तीन हजार वर्श पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलतः वैसा ही है। मिस्र, बेबीलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यताएँ उठी थीं, किंतु काल ने

ISSN : 2582-9092

उन्हें ध्वस्त कर दिया। केवल भारत ही एक ऐसा देश है, जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा है। भारत का अतीत कल भी जीवित था, आज भी जीवित है और कदाचित् आगे भी जीवित रहेगा।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृष्ठ क्र. 93)

दिनकर अपने समय के कवि हैं। कोई भी काव्य अपने समय से बाहर नहीं लिखा जाता है। दिनकर की सोच यह थी कि आत्मा को आंदोलित करनेवाली कोई चीज इधर के युग में नहीं घटी है। इसलिए वे प्राचीन काल और मध्यकाल के नायक अशोक, चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त तथा महाराणा प्रताप की ओर मुड़ते हैं। उनके इतिहास प्रेम और अतीतप्रियता का यही कारण है कि उन्होंने अपने युग की आत्मा को ध्वनित किया है। दिनकर जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि जिस तरह मैं जवानी भर इकबाल और रवींद्र के बीच झटके खाता रहा, उसी प्रकार मैं जीवन–भर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूँ। इसीलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है, वही रंग मेरी कविता का रंग है। मेरा विश्वास है कि अंततोगत्वा यही रंग भारत वर्श के व्यक्तित्व का भी होगा।

खुदी को कर बुलंद इतना, कि हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे, बता, तेरी रज़ा क्या है। (इकवाल)

डॉ. नरेन्द्र मिश्र